यह अष्टपाहुड़, इसमें दर्शनपाहुड़, पहला अधिकार (चलता है)। २९वीं गाथा। **आगे कोई आशंका करता है कि...** किसी को ऐसी शंका समझने के लिये होती है कि **संयमी को वंदने योग्य कहा...** तुमने तो ऐसा कहा कि जिसे सम्यग्दर्शन हो, आत्मा का सम्यक्भान, ज्ञान और चारित्र हो, वह वन्दन करनेयोग्य है। जिसे मोक्षमार्ग अन्दर हो। चैतन्य आत्मा का उसे अनुभव हो। जो धर्म का पहला रूप-स्वरूप है। राग और पुण्य के विकल्प से भिन्न ऐसा आत्मा का ज्ञान और श्रद्धान, वह पहली चीज़ होती है। तदुपरान्त स्वरूप में लीनता, संयम, चारित्र होवे तो वह वन्दन करनेयोग्य है। **तो समवसरणादि विभूतिसहित तीर्थंकर हैं, वे वंदने योग्य हैं या नहीं?** तो तीर्थंकर को तो इतनी विशाल विभूति होती है कि (ऐसी विभूति) साधारण प्राणी को नहीं होती। इन्द्र आकर समवसरण-धर्मसभा रचते हैं, चौंसठ चँवर ढोलते हैं, चौंतीस अतिशय होते हैं। कहो, समझ में आया? संयम तो कहाँ, वहाँ संयम रहा नहीं। सेठी! तो वन्दनयोग्य है या नहीं? उनमें गुण है या नहीं? ऐसा कहते हैं। गुण वन्दनीय है, ऊपर कहा है न? (गाथा २७) **'ण वि देहो**

वंदिज्जइ' गुण वन्दनयोग्य है तो इसमें कहाँ (गुण आये)? यह तो (समवसरण की विभूति है) ऐई! इन्द्रों को भी आश्चर्य हो, ऐसा तो जिसका स्वभावभाव हो और चौंसठ चँवर ऐसे देव ढोले, खम्मा... खम्मा..! देखो न, यह हवा न होवे तो पुस्तक ऐसे रखनी पड़ती है न। ऐसे नहीं रखते, हों! पुस्तक। ऐसा कहता हूँ। गर्मी होवे तो कहीं पुस्तक पढ़ने की, हवा के लिये रखी जाए? उन्हें तो इन्द्र पुण्य के कारण भक्ति से चौंसठ चँवर ढोलते हैं। उन्हें कहीं सर्दी-गर्मी (नहीं लगती)। उन्हें कहीं पसीना नहीं होता। सेठी! उन्हें कोई पसीना नहीं होता। महागुणवन्त परमात्मा वे तो सर्वज्ञ थे। वे **वंदने योग्य हैं या नहीं ? उसका समाधान करने के लिए गाथा कहते हैं कि जो तीर्थंकर परमदेव हैं,..** यह तो परमात्मदशा जिन्हें अन्तर प्रगट हुई, दिव्यध्वनि प्रगट हुई। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र के बल से (परमात्मदशा प्रगट हुई है)। देखो! यह धर्म! अन्तर आत्मा के पूर्ण स्वभाव की अनुभव-प्रतीति और रमणता (होना), वह धर्म है। उस धर्म द्वारा भगवान को केवलज्ञान हुआ, उन्हें पूर्ण गुण प्रगट हुए। समझ में आया?

सम्यक्त्वसहित तप के माहात्म्य से... भगवान तो पूर्व में आत्मा के आनन्दस्वरूप का अनुभवसहित तप अर्थात् संयम, चारित्रसहित भगवान थे। उनके माहात्म्य से तीर्थंकर पदवी को प्राप्त हुए। **वे भी वंदने योग्य हैं..** यह स्पष्टीकरण यहाँ २९ गाथा में करते हैं।

चउसट्ठि चमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ।।२९।।

***अर्थ* – जो चौसठ चंवरों से सहित हैं,...** भगवान ने आत्मा का ध्यान करके, अनुभव करके जो धर्म का मूलरूप से। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द को सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में प्रथम प्राप्त करके और स्वरूप की स्थिरता के संयम द्वारा, उसमें कोई विकल्प रह गया, उसमें तीर्थंकरगोत्र बँध गया, तथापि उस विकल्प को तोड़कर जिन्होंने वीतरागता प्रगट की और वीतरागता के पश्चात् उन्हें केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द भगवान को प्रगट हुआ। ऐसे भगवान चौंसठ चंवर सहित हैं तथापि वह विभूति कहीं उनकी नहीं है; वह तो पुण्य के कारण, देवभक्ति के कारण चंवर ढोलते हैं। यह पवन-गर्मी पड़ती होगी, इसलिए भगवान के लिये करते होंगे? नहीं। यह ठाकुर को नहीं करते? सर्दी होवे तो अग्नि तापते हैं। सुना है या नहीं? सुना है, अपन ने देखा कब हो?

ठाकुर की प्रतिमा होती है न? सर्दी में उन्हें अग्नि सुलगाकर तापे, गर्मी में पंखा लगाये। पंखा लगाये। भगवान को वहाँ कहाँ (गर्मी लगती है) ? ऐ... नवनीतभाई! कितना भोग चढ़ावे। भोग का काल है, भोग के दर्शन हैं, आज अमुक के दर्शन हैं, लोग भागा-भाग करते हैं। अमरेली में बहुत देखा है। उपाश्रय के साथ में था। महिलाएँ एकदम भागें। आहाहा! दर्शन करने। किसके दर्शन?

यहाँ तो आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान का स्वभाव है, ऐसा अन्तर में अनुभव होकर जो कर्तव्य में कर्तव्य करना है, वह यह (है)। समझ में आया? ऐसा अनुभव करके स्वरूप में लीन हुए, उसमें बीच में कोई विकल्प रह गया था तो तीर्थंकरगोत्र बँध गया परन्तु उस विकल्प को तोड़कर फिर केवलज्ञान को प्राप्त हुए। समझ में आया? विकल्प से और तीर्थंकर प्रकृति से प्राप्त नहीं हुए।

मुमुक्षु : तोड़ना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प का अभाव कर दिया। तोड़ने का अर्थ क्या? वह तो राग है। राग का अभाव करके वीतरागता ली, तब केवलज्ञान पाया। समझ में आया? आहाहा!

जो चौसठ चँवरों से सहित हैं, चौतीस अतिशय सहित हैं,... यह पुण्य का प्रभाव बतलाया। **निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है...** ऐसी भगवान की वाणी है। सुननेवाले प्राणी को हित होने में वीतराग की वाणी निमित्त है। समझ में आया? परमात्मा तीर्थंकर होते हैं, (तब) ॐ... ध्वनि पूरी शरीर में से (निकलती है)। और जीव... क्या कहा? देखो **'अणवरबहुसत्तहित्तः' निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है...** बहुत प्राणी का है न? और निरन्तर। वाणी ऐसी है। पात्र जीव भगवान की वाणी सुनें, सभा में आत्मदर्शन प्राप्त करें, उसमें निमित्त है। वह वाणी कहीं प्राप्त नहीं कराती परन्तु भगवान की वाणी में ऐसा आया होता है कि भाई! आत्मा तू स्वयं प्रभु पूर्णानन्द का नाथ है। तू कहाँ खोजने राग में और पर में जाता है! तेरा प्रभु तेरे पास पूर्ण विद्यमान है, वह पामर नहीं है, वह भिखारी नहीं है, वह संसारी नहीं है। समझ में आया? ऐसा वीतराग की वाणी में पूर्ण उत्साह भरपूर वाणी (आती है)। तू पूर्ण है न, भाई! जहाँ नजर डालनी है, वह तो पूर्ण वस्तु है। आहाहा! उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र,

यह अन्तर के स्वभाव में से अन्तर्मुख होने से प्रगट होते हैं। ऐसी भगवान की वाणी सुनकर बहुत से अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करते हैं। समझ में आया?

निरन्तर बहुत प्राणियों का हित... बहुत जीव। देखो! मेंढ़क जैसे जीव हों। लो, ऐसे ड्राउं.. ड्राउं.. करे। एकदम वाणी का प्रपात अन्दर से बहता हो। साक्षात् ओमस्वरूप भगवान देवाधिदेव हम हैं, ऐसा ही तू देवाधिदेव है। आहाहा! यह वीतराग की वाणी में ऐसा आता है। समझ में आया? लो, यह और याद आया। वीतराग की वाणी ऐसा कि भगवान ने देखा होगा (वैसा होगा)। वीतराग की वाणी सब जीव को हितकारी होती है, ऐसा कहा न? समझ में आया? उस वाणी में ऐसा आता है कि वह सुने तो उसे अन्तर में उतरने का मन हो और इसलिए उसके हित में निमित्त कहने में आवे। ऐसी बात है। ऐ.. यह क्या कहा? उस दिन कहाँ थे तुम? यह तो (संवत्) १९७२ की बात है। सुना था तुमने? १९७२-७२, कितने वर्ष हुए? २८ + २६ = ५४। ५४ वर्ष पहले की बात है। भगवान ने देखा होगा, वह भव होगा। भगवान की वाणी ऐसी नहीं होती। ऐ.. सेठी! वाणी ऐसी नहीं होती। वीतराग की वाणी— भव का अभाव जिसने किया, उनकी वाणी भव के अभाव की होती है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमेश्वर... यहाँ भाषा क्या है? देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य की क्या शैली है। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा था। भगवान ने भी ऐसा ही उपदेश किया है।

हम भी सम्यग्दर्शन धर्म को प्राप्त हुए, इससे पहले पूर्ण परमात्मा अरिहन्त हो गये, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर हम अन्तर में उतरे, तब हमें सम्यग्दर्शन हुआ। ऐसा ही उपदेश भगवान की वाणी में आता है। समझ में आया? इससे **'अणवरबहुसत्तहित्तः'** निरन्तर अनन्त-बहुत से प्राणी, अनन्त तो नहीं होते, संख्यात होते हैं। समझ में आया? असंख्यात समकिती हैं परन्तु वे कहीं बाहर सुनने नहीं आते। पशु है न? यहाँ तो संख्यात सुनने आते हैं। देव हो, मनुष्य हो या पशु हो परन्तु वीतराग की वाणी (ऐसी होती है) देखो! यह वाणी की-पुण्य की बात करते हैं, हों!

निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है... जिनसे होता है, ऐसे उन भगवान की वाणी होती है। आहाहा! ऐसे जगा दे, जाग रे जाग! प्रभु! तू पूर्ण प्रभु है न! तेरे विकल्प में भी आना, वह तेरी जाति नहीं। आहाहा! हमारी ओर सुनने का विकल्प,

वह भी तेरा स्वभाव नहीं—ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसके अन्तर में जा। भगवान विराजते हैं। परमात्मा, तू स्वयं परमात्मा है। आहाहा! दया, दान और व्रत, भक्ति के विकल्प राग हैं, वे तेरे स्वभाव में नहीं हैं, उनसे तेरा हित नहीं है। तेरा हित तो अन्दर भरा है, भगवान! ऐसा कहा न? **निरन्तर बहुत प्राणियों का हित जिनसे होता है, ऐसे उपदेश के दाता हैं...** देखो! ऐसे उपदेश के दाता हैं। ऐई! देवानुप्रिया! ऐसी वाणी होती है।

मुमुक्षु : अभी ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं तो ऐसा कहे, भगवान जाने भाई! कब हमारे भव घटेंगे। अब सुन न! वस्तु में भव कैसा? भगवान आत्मा में भव कैसा और भव का कारण अन्दर में कैसा? ऐसी वाणी वीतराग कहकर अनुभव करावे, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! ऐसा अनुभव कर, भगवान! भाई! देख न तू। तुझमें पूर्ण आनन्द और ज्ञान पड़ा है, प्रभु! उस तेरी प्रभुता से पूर्ण प्रभु है उसे सम्हाल न! ऐसी वीतराग की वाणी आती है, कहते हैं। रामजीभाई! आहाहा!

बहुत प्राणी (ऐसी) भाषा ली है न। संख्या नहीं ली। **बहुसत्त्व** अर्थात् जीव। भाषा **सत्त्व** ली है। आहाहा! **सत्त्व** बहुत जीव जो सत्त्ववाले जीव हैं, उनके हित की वाणी भगवान की आती है। सुख की प्राप्ति के उपाय की वाणी, उसमें आता है। समझ में आया? तुम्हारे घर में जा। परघर में से विमुख हो, ऐसी वाणी वीतराग की होती है, लो! कहते हैं। समझ में आया?

और कर्म के क्षय का कारण हैं... देखो! कर्म के क्षय का कारण कहना, आत्मा के गुण की पर्याय को, यह निमित्त। उसके बदले भगवान की वाणी और भगवान कर्म के क्षय का कारण (कहा), भाई! क्षयोपशम का या उपशम का (कारण), ऐसा नहीं। भाषा तो देखो? है न? मूल पाठ है। यह तो हेतु है पूरा। मूल में भाव करावे ऐसी वाणी वीतराग की होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पूर्ण आनन्द का प्रभु, शान्ति का सागर तू है, भाई! तेरी नजर के आलस से संसार रह गया है। समझ में आया? जहाँ नजर डाले तो आनन्द का कन्द प्रभु, आनन्दधाम अतीन्द्रिय आनन्द का वह तो सरोवर है। उसके किनारे अन्दर में जा और मीठे मधुर आनन्द का पेय पी, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

समझ में आया ? विषय के भोग की रुचि का तो विरेचन करा डालती है। यह आ गया है न पहले ? जिनवचन वीतराग के कैसे होते हैं ? रेच करा डालते हैं ऐसे। आहाहा! अरे प्रभु! तुझमें आनन्द है न! प्रभु! यह विषय में सुख की कल्पना! कहाँ गया तू ? समझ में आया ? जहाँ नहीं, वहाँ गया, यह तुझे क्या हुआ ? भगवान अन्दर है।

ऐसी वाणी आती है कि विषय की सुखबुद्धि का तो रेच करा डाले, दस्त करा डाले। ऐसे परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी की समवसरण में वाणी निकलती है। इन्द्र होते हैं, गणधर होते हैं। आहाहा! अर्थात् कि परसन्मुख के भाव को विनष्ट कर दे, ऐसी उनकी वाणी होती है। धीरुभाई! लो, यह वीतराग की वाणी ऐसी होती है। ऐसी शैली है, क्योंकि स्वयं सर्वज्ञ हुए, वे पहले जब तीर्थंकरगोत्र बाँधा था, तब विकल्प तो ऐसा था कि मैं पूर्ण होऊँ और जीव धर्म को प्राप्त करे, अतः उनकी वाणी में तो धर्म प्राप्त करने का ही निमित्त होता है। गिरने का, नीचे जाने का, वापस बदलने का उस वाणी में नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ?

कर्म के क्षय का कारण हैं, ऐसे तीर्थंकर परमदेव हैं, वे वंदने योग्य हैं। गणधर और इन्द्रों को भी वन्दने योग्य हैं। यह विभूति तो लोग, इन्द्र करते हैं, इसमें उन्हें क्या है ? समझ में आया ?

***भावार्थ* – यहाँ चौंसठ चँवर, चौंतीस अतिशय सहित विशेषणों से तो तीर्थंकर का प्रभुत्व बताया है...** बाहर की पुण्य प्रकृति, हों! तीर्थंकर अर्थात् अन्दर स्वभाव की नहीं। **और प्राणियों का हित करना तथा कर्मक्षय का कारण विशेषण से दूसरे का उपकार करनेवालापना बताया है,...** लो, दोनों। पर के उपकार में निमित्त यह। देखो! व्यवहार आया। व्यवहार भी ऐसा होता है उनका, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हित में निमित्त है न। उपकार करनेवाला जो अपना आत्मा अन्दर में है, वह वाणी में आता है। भगवान की वाणी में। पूर्ण आनन्द का धाम सरोवर स्वयंभू सागर है। भाई! तुझमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वयंभू समुद्र है। उसमें नजर डाल। ऐसी वाणी में निमित्तपना होता है, इससे वह सर्व जीव का हित करने में, उपकार करने में उपकारी कहने में आते हैं। जिन्हें आत्मा का उपकार अन्दर में होता है, उन्हें वाणी

उपकार करती है, ऐसा कहने में आता है। जिन आत्माओं ने भगवान की वाणी सुनी, तीर्थंकर की वाणी सुनी, केवली पण्णत्तो धम्मो शरणम्, ऐसा आया या नहीं। ऐसी वाणी सुनकर जो आत्मा का अन्तर में हित करनेवाले हैं, अन्दर में आत्मा का उपकार करनेवाले हैं, स्वयं देव, स्वयं गुरु और स्वयं धर्म। ऐसा भगवान की वाणी में आया था। समझ में आया? ऐसा जिसने अन्तर में आत्मा को ढंढोलकर, खोलकर शोध लिया है और उसके घोलन में जो वर्तता है, ऐसे धर्मी को जीव ने स्वयं अपना उपकार किया है, उसे वीतराग की वाणी व्यवहार से उपकार (करती है), ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो उपकार होता ही है, उसकी बात है। वीतराग की वाणी सुननेवाले को अन्दर में लायक पात्र होता है, उसे ही यह वाणी निमित्त आती है। तब उसे उपकारी कहा जाता है। समझ में आया?

उपकार करनेवालापना बताया है, इन दोनों ही कारणों से जगत में वंदने, पूजने योग्य हैं। इसलिए इसप्रकार भ्रम नहीं करना कि तीर्थंकर कैसे पूज्य हैं,.. समझ में आया? **तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं।** अब गुण लिया। यह तो पूर्ण सर्वज्ञ परमात्मा। बाहर की ऋद्धि तो इन्द्र अपनी भक्ति से अन्दर करता है। उसे कोई लेना-देना नहीं है। उसे कोई चँवर के साथ सम्बन्ध नहीं है और समवसरण के साथ सम्बन्ध नहीं है, वाणी के साथ सम्बन्ध नहीं है। ओहो! समझ में आया? तीर्थंकर तो सर्वज्ञ हैं, एक समय में तीन काल-तीन लोक जाननेवाले हैं और वीतराग हैं। पहले वीतराग होने के बाद सर्वज्ञपना होता है तो सर्वज्ञ वीतराग हैं। उन्हें कहीं यह चँवर ढोले, इसलिए सुख शान्ति मिले, ऐसा होगा? वाणी निकलती है, इसलिए ठीक होता है, ऐसा है अन्दर? वाणी के कारण वाणी निकलती है। समझ में आया? देखो! यह तीर्थंकर अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग गुण से ऐसे होते हैं और पुण्य में ऐसे होते हैं, ऐसा बताते हैं। समझ में आया? यह गुणी है, इसलिए वन्दनेयोग्य हैं।

उनके समवसरणादिक विभूति रचकर इन्द्रादिक भक्तजन महिमा करते हैं। देखो! यह तो इन्द्र आकर भक्ति (करते हैं कि) ओहो! प्रभु! समवसरण की रचना (होती है) देव आकर चँवर ढोलते हैं, आते हैं न? ऐसे चँवर कि बगुले के पंख जैसे। आते हैं न उसमें? ...स्तुति में आया है। मानो बगुले की पंक्ति ऊँची-नीची होती हो, ऐसे श्वेत,

उज्ज्वल चंवर देव झलते हैं। क्या करना? भगवान को साता होने के लिये, ऐसा होगा? वे तो अनन्त आनन्दमय हैं। उन्हें साता पर से कहाँ लेनी है और देनी है? जिन्हें अनन्त आनन्द की कली पूर्ण खिल गयी है। पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। वे तो वीतराग हैं। आहाहा! भक्तजन अपनी भक्ति से महिमा करते हैं।

इनके कुछ प्रयोजन नहीं है,.. इनके कुछ प्रयोजन नहीं है। भगवान के कुछ प्रयोजन नहीं है। **स्वयं दिगम्बरत्व को धारण करते हुए अंतरीक्ष तिष्ठते हैं..** लो, भगवान तो दिगम्बर हैं, ऐसे वस्त्र का धागा भी तीर्थंकर को नहीं होता और अन्तरीक्ष-सिंहासन से ऊँचे बैठे होते हैं। नीचे सिंहासन को स्पर्श नहीं करते.. आहाहा! देखो! ऐसे देव का स्वरूप साथ में वर्णन करते हैं और उन्हें सर्वज्ञ और वीतरागता होती है, वह वन्दने और आदरनेयोग्य है। समझ में आया?

स्वयं दिगम्बरत्व को धारण करते हुए... वे तो नग्न-मुनि हैं। तीर्थंकर हैं, वे केवल (ज्ञान) प्राप्त हुए। नग्न होते हैं। शरीर अत्यन्त नग्न-दिगम्बर। **अंतरीक्ष तिष्ठते हैं..** बैठने का वापिस कोई कहे, सिंहासन है न? वह सब समवसरण और (सब है न)। वे तो अध्धर बैठते हैं। सिंहासन से अध्धर होते हैं। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा जानना।** लो।

गाथा-३०

आगे मोक्ष किससे होता है सो कहते हैं -

णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो।।३०।।

ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण संयमगुणेन।
चतुर्णामपि समायोगे मोक्षः जिनशासने दृष्टः।।३०।।

हैं ज्ञान से दर्शन तपों से चरित्र संयम गुणों से।
इन चार से संयुक्त का ही जिनधर्म में मोक्ष है।।३०।।

अर्थ – ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र से इन चारों का समायोग होने पर जो संयमगुण हो उससे जिन शासन में मोक्ष होना कहा है।।३०।।

गाथा-३० पर प्रवचन

आगे मोक्ष किससे होता है सो कहते हैं – लोग कहते हैं न, भाई! हमें सुख कैसे प्राप्त हो? धर्म कैसे प्राप्त हो? मुक्ति कैसे हो? इस प्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो।।३०।।

ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, जैन शासन में ऐसा कहा गया है। जैन शासन में इस प्रकार लिखा है। वीतरागमार्ग में इस प्रकार कहा है कि **ज्ञान,..** आत्मा का ज्ञान-स्वसंवेदन ज्ञान। आत्मा अन्दर वस्तु चैतन्यबिम्ब है, उसका ज्ञान, वह मोक्ष का कारण है। आत्मा का **दर्शन,...** आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति, वह सुख का कारण और धर्मरूप मोक्ष का कारण है। **तप...** अर्थात् इच्छानिरोध। अतीन्द्रिय आनन्द की उग्रता के द्वारा। और **चारित्र से...** दोनों रखे हैं न? दोनों शब्द—**तवेण चारियेण**

इन चारों का समायोग होने पर... 'संजमगुणेण' 'चरियेण संजमगुणेण' यह शब्द नहीं आया। इसके बाद सब है, देखा? **इन चारों का समायोग होने पर जो संयमगुण हो...** ऐसा डाला है। **'चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो'** समझ में आया? चारों के मेल से अन्दर संयमपना प्रगट हुआ है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तप इच्छानिरोध, इन चार के समायोग से अन्दर में पर से हटकर स्वरूप में स्थिरता जमी है, ऐसे संयम गुण द्वारा **जिन शासन में मोक्ष होना कहा है।** वीतरागमार्ग में इस कारण से मोक्ष होता है – ऐसा कहा है। समझ में आया? भगवान ने तो इसमें ऐसा भी नहीं कहा कि मेरी भक्ति से तेरा मोक्ष होगा। इसमें कहीं आ जाती होगी। इसमें कहीं आयी है। समझ में आया? तप में आ जाता है। तप में आता है न? चारित्र में व्रत आवे, विकल्प है और तप में आता है न? अनशन, ऊनोदर, विनय और वैयावृत्त्य

नहीं आता? उसमें से कुछ होता होगा। यह तो तब संयमपना वीतरागी पर्याय है, वह मोक्ष का कारण है, ऐसा कहते हैं। इसीलिए तो संयम कहा है। सम-यम। सम्यक् प्रकार से आत्मा के अनुभवसहित अन्दर में यम अर्थात् लीनता होना, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो ऐसी बात है कि जिसे जन्म-मरण से छूटने की बात हो, उसकी बात है। कहीं मिठास स्वर्ग में, सेठाई में, राज में और चक्रवर्तीपने में रह जाए, उसे संसार चाहिए। उसे मोक्ष नहीं चाहिए। आहाहा! उसे महिमा चाहिए। बाहर की (महिमा)। उस महिमावाले का यह मार्ग नहीं है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जैन शासन में—ऐसी भाषा की है न? वीतराग शासन में। जैन शासन किसे कहा वहाँ? १५वीं गाथा में देखो न! शुद्धोपयोग भावश्रुतज्ञान, वह जैन शासन। ठीक! समझ में आया? बालक होवे, उसे बहुत ऐसा नहीं करते। वह तो चलता है। समझ में आया? स्वयं बालक थे, तब ऐसे थे, ऐसा याद करके समाधान रखना। वह तो बालक है तो चले। ...जाता है तो क्या हुआ?

मुमुक्षु : सिर मारे...

पूज्य गुरुदेवश्री : सिर मारे। दिक्कत यह थी। सिर मारे। उसमें कुछ नहीं, बालक है। छोटा बालक वह बेचारा आया है और बैठा है न! कहो, समझ में आया? यहाँ सोना नहीं चाहिए, हों! लड़कों को ध्यान रखना और दीवार के सहारे नहीं बैठना चाहिए। यह तो वृद्ध हों, वे दीवार के सहारे बैठे। लड़के दीवार के सहारे बैठते हैं? यहाँ कहते हैं... आहाहा! खाना होवे तो कोई दीवार के सहारे बैठे-बैठे खाया जाता है? तो भी ऐसा करना पड़े।

मुमुक्षु : तो भी टेढ़ा झुकना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : टेढ़ा झुकना पड़े।

मुमुक्षु : कुर्सी पर बैठा हो तो भी ऐसा करना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुर्सी पर बैठा हो तो भी ऐसा करना पड़े, थोड़ा तो झुकना पड़े। सुननेवाले को तो... क्या कहलाता है नींद की नहीं लेना चाहिए। नींद का सहारा लिया जरा, आराम का। आहाहा!

ऐसा मार्ग कहाँ मिले ? भाई ! महाकठिनता से चौरासी में से निकलकर, निगोद में से निकलकर (यहाँ आया है)। समझ में आया ? और निगोद में से बहुत समय में निकला परन्तु फिर भव में से कहीं से निकला है न ! आहाहा ! अरे ! भव के भ्रमण में रहा, घानी की तरह पिल गया। आहाहा ! निगोद में एक श्वास में अठारह भव, गजब बात है ! भगवान केवली कहते हैं। निगोद यह आलू, शकरकन्द, हरी काई, एक श्वास अठारह भव। जन्मे और मरे, जन्मे और मरे। आहाहा ! यह आकुलता के जन्म-मरण के दुःख। भाई ! इस आनन्द को भूलकर भोगे हैं। वस्तु तो वस्तु रही है, हों ! पर्याय में ऐसा हुआ है, भाई ! आहा ! तेरे दुःख की बातें...

वहाँ भावपाहुड़ में तो आयेगा, भाई ! तू मर गया और तेरे मरण के पीछे तेरी माँ के आँसू अनन्त समुद्र भर जाएँ, इतना तेरी माँ पीछे रोयी है। आहाहा ! समझ में आया ? तेरे इतने मरण हुए हैं कि मरण के बाद (माता ने इतना रुदन किया है)। बीस-बीस वर्ष का जवान लड़का... कहा न ?.... इसकी माँ को कैसा होता होगा ? ऐसे मरण तूने किये हैं, भाई ! तेरी माँ के आँसू के रोने की बूँदें इकट्ठे करें तो स्वयंभूरमण समुद्र अनन्त भर जाएँ। आहाहा ! अनन्त काल में क्या नहीं हुआ ? किसे अनन्त नहीं कहना ? और भान होवे तो ही अनन्त का ज्ञान और अनन्त आनन्द आता है, कहते हैं। वह भी अनन्त है और वह (दुःख) भी अनन्त है। आहाहा ! समझ में आया ?

अरे ! दुःख के जले आठ-आठ वर्ष के राजकुमार (कहते हैं) ऐ... माँ ! मुझे कहीं शान्ति नहीं है। मुझे अब जाने दे, माँ ! तुझे एक बार रोना हो तो रो, परन्तु फिर से अब माँ नहीं बनाऊँगा, हों ! हमें आत्मा, हमारा आत्मा इस चौरासी लाख में दुःखी है। चार गति में दुःख की घानी में पिलता है, माँ ! आज्ञा दे, हमारा साधन वन में जाकर करें। आहाहा ! आठ-आठ वर्ष के बालक, धन्य अवतार न ! जिन्हें एक मोरपिच्छी छोटी और छोटा कमण्डल। आहाहा ! दिखाव ! ऐसा चारित्र अन्दर में जिसे रमता हो, वे आठ वर्ष के बालक, हों ! वे अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लें ! आहाहा ! भाई ! तू बालक कहाँ है ? भाई ! तू बालक कहाँ है, तू वृद्ध कहाँ है। तू तो आत्मा है न, प्रभु ! आहा !

कहते हैं, ज्ञान-दर्शन-चारित्र से मोक्ष का साधन जैन शासन में कहा है। आहाहा ! वीतराग की शिक्षा कहो या वीतरागभाव कहो, वह जैनशासन है। समझ में आया ?

गाथा-३१

आगे इन ज्ञान आदि के उत्तरोत्तर सारपणा कहते हैं –

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं।।३१।।

ज्ञानं नरस्य सार: सार: अपि नरस्य भवति सम्यक्त्वम्।
सम्यक्त्वात् चरणं चरणात् भवति निर्वाणम्।।३१।।

है सार नर का ज्ञान उसका सार भी सम्यक्त्व है।
सम्यक्त्व से चारित्र है चारित्र से निर्वाण है।।३१।।

अर्थ – पहिले तो इस पुरुष के लिए ज्ञान सार है, क्योंकि ज्ञान से सब हेय-उपादेय जाने जाते हैं, फिर उस पुरुष के लिए सम्यक्त्व निश्चय से सार है, क्योंकि सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है, सम्यक्त्व से चारित्र होता है, क्योंकि सम्यक्त्व बिना चारित्र भी मिथ्या है, चारित्र से निर्वाण होता है।

भावार्थ – चारित्र से निर्वाण होता है और चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होता है तथा ज्ञान सम्यक्त्वपूर्वक सत्यार्थ होता है, इसप्रकार विचार करने से सम्यक्त्व के सारपना आया। इसलिए पहिले तो सम्यक्त्व सार है; पीछे ज्ञान चारित्र सार है। पहिले ज्ञान से पदार्थों को जानते हैं अत: पहिले ज्ञान सार है तो भी सम्यक्त्व बिना उसका भी सारपना नहीं है, ऐसा जानना।।३१।।

गाथा-३१ पर प्रवचन

आगे इन ज्ञान आदि के उत्तरोत्तर सारपणा कहते हैं – यह स्तुति, गाथा में होता है। लड़के बोले (उसमें)। सारं, दर्शनं, ज्ञानं नहीं आता? परन्तु ज्ञान, दर्शन अर्थात् क्या? अपने श्लोक आता है। स्थानकवासी में... होता है न? उसमें बोले।... फिर यह बोले सारं, दर्शनं, ज्ञानं सारं सयमं। ऐई! शान्तिभाई! सीखे थे या नहीं? सारं जिनवर धम्मं.. पश्चात्? सारं पंडित मरण। परन्तु यह कहना किसे? यह तो भाषा है।

मुमुक्षु : बोलते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलते थे परन्तु क्या बोलते थे? यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं–

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं।।३१।।

अर्थ – **पहिले तो इस पुरुष के लिए ज्ञान सार है,..** सम्यक् आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान सार है। आहाहा! कहो, यह पैसा सार है और अच्छा शरीर सार है और बड़ी इज्जत प्राप्त करना, वह सार है, ऐसा कुछ यहाँ नहीं कहा। इसमें धूल में भी सार नहीं है। ऐसा होगा? मलूकचन्दभाई! आहाहा! कहते हैं, अरे! ज्ञान चैतन्यप्रभु सर्वज्ञस्वरूपी भगवान को देखा, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान, वह इस जगत में सार है और वह ज्ञान उस समकितसहित होता है। यहाँ मूल तो वजन समकित का देना है। समझ में आया?

पहिले तो इस पुरुष के लिए ज्ञान सार है,.. वह ज्ञान कौन? यह पढ़ना-बढ़ना, वह ज्ञान नहीं है। यह शिक्षा का ज्ञान, वह ज्ञान होगा या नहीं? तब तू किसलिए पढ़ने जाता है? पढ़ता है किसलिए? यहाँ तू वहाँ पढ़ने के लिये जानेवाला है। ऐई! सुरेश! तेरे पिता कहते हैं, जा दूसरे... जाना पड़ेगा। आहाहा! कहते हैं कि यह संसारी शिक्षा का ज्ञान तो सार नहीं है परन्तु शास्त्र का ज्ञान भी सार नहीं है। सार तो भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु का स्वसंवेदन ज्ञान (सार है)। स्व अर्थात् अपना सं अर्थात् प्रत्यक्ष। राग और मनरहित चैतन्य का सीधा जिस ज्ञान को अवलम्बन है, उस ज्ञान को सार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि ज्ञान से सब हेय-उपादेय जाने जाते हैं,... ज्ञान से-भेदज्ञान से हेय रागादि और उपादेय त्रिकाली आत्मा, यह ज्ञान में ज्ञात होता है। इसलिए इस ज्ञान को-इस प्रकार भेदज्ञान का सार कहने में आता है। समझ में आया? जाते अर्थात् जिससे। **ज्ञान से सब हेय-उपादेय...** देखो! सब हेय-उपादेय। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ध्रुव चैतन्य आनन्द, वह उपादेय है, आदरणीय है अर्थात् उसके सन्मुख होकर अनुभव करनेयोग्य है। ऐसा ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है और रागादि, विकल्प आदि हेय हैं। वे ज्ञान द्वारा ज्ञात होते हैं। आत्मा के ज्ञान द्वारा वे ज्ञात होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

फिर उस पुरुष के लिए सम्यक्त्व निश्चय से सार है,... वास्तव में तो आत्मा को सम्यग्दर्शन सार है क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सम्यक् स्वसंवेदन ज्ञान नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इस आत्मा को **सम्यक्त्व निश्चय से सार है,... 'सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं..' 'णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं'** यह आया न? मनुष्य को ज्ञान भी (सार है)। '**वि**' शब्द पड़ा है न? '**अपि**' '**अपि**' में जोर डाला है। **निश्चय से सार है,...** सम्यग्दर्शन सार है अर्थात् आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द, उसकी अन्तर में ज्ञान होकर प्रतीति-श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन वीतरागमार्ग में सार है। समझ में आया? इतने लड़के हुए और इतने पैसे हुए और इतनी इज्जत बढ़ाई, इसलिए सार है, धूल भी नहीं। सब हैरान होने के रास्ते हैं। समझ में आया?

भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा, सार तो सम्यग्ज्ञान, भेदज्ञान सार है। राग हेय है, त्रिकाल स्वभाव उपादेय है। वह ज्ञान-भेदज्ञान से ज्ञात होता है और वह ज्ञान, सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता। समझ में आया? दर्शनपाहुड़ है न? यह मुख्य सम्यग्दर्शन का अधिकार है न! आहाहा! समझ में आया?

उस पुरुष के लिए सम्यक्त्व निश्चय से सार है, क्योंकि सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है,... लो। आहाहा! शास्त्र पढ़ा हुआ हो, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना वह ज्ञान मिथ्याज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान पूर्ण स्वरूप देवाधिदेव स्वयं आत्मा है। ऐसा उसका स्वभाव पूर्ण है। उसका भान होकर प्रतीति (होना) वह सम्यग्दर्शन सार चीज़ है। सम्यग्दर्शन सार तो बहुत से बोलते हैं परन्तु इससे सम्यग्दर्शन कहना किसे? देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, नवतत्त्व की श्रद्धा, (वह) सम्यग्दर्शन... हो गया। जाधवजीभाई! वह समकित नहीं है, वह तो मिथ्यात्व है। पर के लक्ष्यवाला ज्ञान, उसे मानना कि समकित है, वह तो मिथ्यात्व है। कहो, समझ में आया?

वह सार खोजो दुनिया में तो कहते हैं कि पहला सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर और वह सम्यग्ज्ञान भी सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता, इसलिए सम्यग्दर्शन सार है। आहाहा! समझ में आया? ग्यारह अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़े परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान, वह सम्यग्दर्शनरहित मिथ्याज्ञान है। आहाहा! क्योंकि उसमें राग से भिन्न पड़कर आत्मा का भान और विवेक नहीं आया। विवेकरहित ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! यह विवेक, हों! समझ में

आया ? ऐसा मार्ग दुनिया को लगता है कि यह अनभ्यासी चीज़ ऐसी महँगी हमें लगती है। उसका दूसरा कोई रास्ता हल्का होगा ? हल्का कहो या ऊँचा कहो; जो है, वह यह है। आहाहा ! जो सत् भगवान आत्मा है और उस सत् का स्वभाव सत्तास्वरूप है, अस्तिवाला है। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द... फैलाव है। जिसमें आनन्द और ज्ञान का फैलाव पड़ा है। बेहद स्वभाव है। ऐसा आत्मस्वभाव, उसमें अन्तर में प्रतीति अन्तर्मुख होकर के (होना)। यह वस्तु है, ऐसा भान होकर श्रद्धा होना, वह समकित जगत में भगवान त्रिलोकनाथ कहते हैं कि सार है। कहो, समझ में आया ? अनन्त बार द्रव्यलिंग धारण किया, पंच महाव्रत लिये, वह कोई सार नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दिगम्बर साधु हुआ, अट्ठाईस मूलगुण ऐसे निरतिचार व्यवहार के (पालन किये), वह कुछ सार नहीं है क्योंकि रागरहित पूरा आत्मा, उसकी तो असातना हो गयी और विकल्प का आदर हुआ है। जिसमें-सम्यग्दर्शन में पूरा आत्मा आदरणीय होता है और वह विकल्प ज्ञान में हेय ज्ञात होता है। ऐसा सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शनसहित का (सम्यग्ज्ञान), वह सार है। लो, यह समझ में आया ? मोहनलालभाई ! तुमने पूछा था न ?—कि क्या करना ? यह करना है। सुख के लिये उपाय क्या ? नहीं पूछा था। यह, उपाय यह है। आहाहा !

आत्मा वस्तु भगवान जैसा कहते हैं, वैसा पहले जानकर, पहिचानकर और फिर स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन करना, उसमें जो ज्ञान होता है, उसे यहाँ सार (कहते हैं) और सुख का उपाय यह है। दूसरा कोई सुख का उपाय नहीं है। सुख अर्थात् पूर्ण मोक्ष। आहाहा ! समझ में आया ? दुनिया का परोपकार करना, दुनिया को सहायता देना, ऐसा करना, इसलिए आत्मा का हित होगा, बापू ! ऐसा नहीं है। आहाहा ! रागरहित भगवान निष्क्रिय है। राग की क्रिया अपेक्षा से। ऐसा चैतन्यबिम्ब प्रभु है न ! भगवान की वीतराग मुद्रा देखकर भी इसे ऐसा विचार करना चाहिए। भगवान जैसे वीतराग स्थिरबिम्ब स्थित हैं, ऐसा मेरा सत्त्व राग से भिन्न, राग की परिणति / पर्याय से भिन्न शुद्धचैतन्य वस्तु का सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान करके सम्यक् होना और उस सम्यग्दर्शनसहित का ज्ञान, उसे सार कहा जाता है। आहाहा ! पहले यह लिया, फिर चारित्र सार लेंगे। समझ में आया ? क्यों ?—कि

सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है,... आहाहा ! आनन्दस्वभाव भगवान

आत्मा का है। अतीन्द्रिय आनन्द की कतली। उसे चूसना-अनुभव करना। इस अनुभव में जो प्रतीति होती है, वह सार है। समझ में आया? **सम्यक्त्व से चारित्र होता है,...** है न? देखो! **'सम्मत्ताओ चरणं...' 'सम्मत्ताओ चरणं'** तीसरा पद है। और वह समकित होवे तो चारित्र होता है। समकित के बिना चारित्र नहीं होता। समझ में आया? सम्प्रदायवालों को तो समकित बिना सब करो, वह मिथ्या है, इतना सुनना सुहाता नहीं है। समकित किसे कहना, एक ओर रखो। अपने महाराज सब तपस्या कर गये, अपवास कर गये, चारित्र पालन कर गये, उन्हें समकित नहीं था? परन्तु सुन न! समकित नहीं था परन्तु समकित किसे कहना, इसका भान नहीं था। ऐई! समझ में आया?

मुमुक्षु : क्रियाएँ पहली।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग। आहाहा!

जैसा उसका-भगवान आत्मा का स्वरूप है, वह पूर्ण वीतराग है। राग से हिले नहीं, ऐसा वह स्वभाव है। ऐसा वीतरागबिम्ब चैतन्य पूर्ण यह आत्मा है, ऐसा ज्ञान होकर प्रतीति होना, वह जगत में भगवान कहते हैं कि सार है। भले ज्ञान कम हो, समझाना भी न आता हो। आहाहा! समझ में आया?

सम्यक्त्व बिना ज्ञान मिथ्या नाम पाता है, सम्यक्त्व से चारित्र होता है, क्योंकि सम्यक्त्व बिना चारित्र भी मिथ्या है,... उस ज्ञान को मिथ्या कहा, वह चारित्र मिथ्या कहा। जिसे आत्मा अन्दर निर्विकल्प अनुभव की प्रतीति नहीं, इसके बिना व्रत और क्रियाकाण्ड करे तो सब वृथा एकरहित शून्य है। समझ में आया?

भजन में बहुत दृष्टान्त दिये हैं। भजनावली पुस्तक है न? इन्दौर से प्रकाशित हुई है न? बहुत भजन (दिये हैं) द्यानतराम और दौलतराय, भैया भगवतीदास, उसमें अध्यात्म संग्रह है। पानीरहित सरोवर, नींव बिना मकान, नीचे जड़रहित वृक्ष; ऐसे सम्यक्त्व बिना सब व्यर्थ है। समझ में आया? आहाहा! पति नहीं और फिर शृंगार पहने, यह टीका करे और ऐसा करे, तुझे किसे बताना है, पति तो है नहीं। आहाहा! यह तेरे टीका-टपला करना व्यर्थ है; इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना भगवान की पूजा और भगवान के भजन करना, यह सब मोह भजन है, ऐसा कहते हैं। अनुभवप्रकाश में (कहते हैं) आहाहा! जंगल में जैसे हिरण (रहते हैं), और गाँव में जैसे कुत्ते-श्वान (रहते हैं), दोनों समान हैं, कहते हैं।

आहाहा! आता है या नहीं उसमें। अनुभवप्रकाश में। गाँव में श्वान, जंगल में मृग रहते हैं, वैसे आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प के क्रियाकाण्ड से अत्यन्त भिन्न है, ऐसा जिसे भान नहीं, वे भानरहित, अनुभवरहित हैं। कहते हैं, वे गाँव के श्वान और बाहर के मृग उनके जैसे हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : श्वान अर्थात् कुत्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुत्ता, श्वान अर्थात् कुत्ता। श्वान का अर्थ है न कुछ? यह कुत्ता नहीं कहते? कुत्ता अर्थात् कुसंस्कार से तिरे, वह कुत्ता ऐसा कहते हैं। संसार से तिरे, वह धूल नहीं तिरे। ऐसा कहते हैं। छोटी उम्र में सुना था। पोथी तर्या कूतरा। ऐसा कि कुत्ते का नम्बर अन्त में होता है। ऐसे के ऐसे। छोटी उम्र में सुनते थे। धूल भी नहीं बेचारे। लट पड़े, यह सिर सड़े, लटों में। ऐसे-ऐसे करते... आर्तध्यान करके कहीं मरकर बेचारा (जाता है)। और फिर कुत्ता हो, हिरण हो। आहाहा! बेचारा पशु की जाति प्राप्त करे। बहुत माँस आदि न खाया हो।

तिरने का उपाय भगवान ने जो कहा, वह तो आत्मा का सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसकी सम्यग्दर्शनसहित चारित्र वह है। सम्यग्दर्शन बिना व्रत, तप को... यहाँ चारित्र लिया है न? **सम्यक्त्व से चारित्र होता है, क्योंकि सम्यक्त्व बिना चारित्र...** ऐसा चारित्र नहीं होता परन्तु लोग कहते हैं न? हमने चारित्र अंगीकार किया, पाँच महाव्रत अंगीकार किये, दीक्षा ली। सब मिथ्या है। दक्ष्या है, दीक्षा नहीं। समझ में आया? समकित के बिना चारित्र... समकित अर्थात् देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा के विकल्प से भी पार निर्विकल्प अन्दर वेदन होकर प्रतीति होना, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उसके बिना व्रत और तप के एकरहित शून्य भी लिखे हैं। बहुत दृष्टान्त दिये हैं। एक के बिना शून्य है। रण में शोर मचाने जैसी बात है। आहाहा! समझ में आया? सब मानते हैं। क्या करे?... दूसरा सुना नहीं, मार्ग दूसरा है, कहाँ ढलना और कहाँ से हटना, यह बात सुनने को मिली नहीं, इसलिए वहाँ रुक गया। समझ में आया?

चारित्र से निर्वाण होता है। लो, पहले मिथ्या कहा। समकितरहित ज्ञान मिथ्या और समकितरहित चारित्र मिथ्या। परन्तु **'सम्मत्ताओ'** समकित सहित का ज्ञान और समकित सहित का चारित्र, वह मुक्ति का कारण है, निर्वाण का कारण है। समझ में आया

या नहीं... ? मार्ग ऐसा है भगवान का। थोड़ा दिन, एक–दो दिन में तो ऐसा लगे, यह क्या है ? वीतराग का मार्ग यह है, भाई ! परमेश्वर तीर्थंकरदेव इन्द्रों के समक्ष, गणधरों की समक्ष में यह बात कहते थे, वह बात यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया ?

***भावार्थ* – चारित्र से निर्वाण होता है और चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होता है...** सच्चे ज्ञानपूर्वक चारित्र सच्चा होता है, ऐसा कहते हैं। **तथा ज्ञान सम्यक्त्वपूर्वक सत्यार्थ होता है,...** पहले मिथ्या, मिथ्या कहा था न ? उसके सामने सच्चा–सच्चा कहा। चारित्र अर्थात् स्वरूप के अन्दर रमणता, आनन्द की लहरता, आनन्द की हिलोरें अन्दर में उठे, अतीन्द्रिय आनन्द के हिलोरे उठे। उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा ! लोग कहते हैं कि चारित्र तो दूध के दाँत से चने चबाने जैसा है। बापू ! ऐसा दु:ख होगा चारित्र ? अभी भान नहीं होता (कि) चारित्र किसे कहना ? दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना, बापू ! दु:ख होगा बेचारा।

चारित्र अर्थात् अन्तर के आनन्द की हिलोरें अन्दर से उठें, आनन्द का उफान (आवे) ऐसा चारित्र, उससे मुक्ति होती है। वह चारित्र, ज्ञानपूर्वक सच्चा होता है। सच्चा स्वसंवेदन ज्ञान हो तो वह चारित्र सच्चा होता है और **तथा ज्ञान सम्यक्त्वपूर्वक सत्यार्थ होता है,...** और वह ज्ञान भी सम्यग्दर्शन होवे तो ज्ञान सच्चा होता है। समझ में आया ? **इस प्रकार विचार करने से सम्यक्त्व के सारपना आया।** लो ! ऐसा विचारने पर सबमें समकित का सारपना आया। समझ में आया ?

इसलिए पहिले तो सम्यक्त्व सार है; पीछे ज्ञान चारित्र सार है। जिससे पहले तो समकित सार है, ऐसा कहते हैं; पश्चात् ज्ञान और पश्चात् चारित्र। **पहिले ज्ञान से पदार्थों को जानते हैं, अत: पहिले ज्ञान सार है तो भी सम्यक्त्व बिना उसका भी सारपना नहीं है,..** इसलिए समकित, वह इस जगत में मूल सार पहली चीज़ है। दर्शनपाहुड़ है न ! यह सम्यग्दर्शन अर्थात् वस्तु का पूर्ण स्वभाव, उसका अन्तर अनुभव होकर प्रतीति होना, उसे सम्यग्दर्शन और उसे सार में सार कहा जाता है। उस सहित ज्ञान और चारित्र हो तो सार कहा जाता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)